|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

1/2 (श्लोक 1-13), शनिवार, 28 दिसंबर 2024

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/yUDE1otu3SU

कर्म अर्पण और कर्मसंन्यासयोग

गीता परिवार के गीत, सदा रक्षक हनुमान चालिसा पाठ, माँ सरस्वती वन्दना और परम्परागत दीप प्रज्वलन के साथ सत्र का श्रीगणेश हुआ।

माँ सरस्वती, भगवान् श्रीकृष्ण, सन्त श्रीज्ञानेश्वर महाराज, परमपूज्य गुरुदेव श्रीगोविन्ददेव गिरि जी महाराज के चरणकमलों मे वन्दन करते हुए विवेचन का प्रारम्भ हुआ।

गीता साधना शिविर में परमपूज्य सद्गुरु स्वामीजी से जो कर्मसंन्यासयोग की शिक्षा पाई, अध्ययन किया उसी प्रसाद को बाँटने का दायित्व निभाते हुए विवेचन की शुरुआत हुई। श्रीभगवान् ने अर्जुन को ज्ञानमार्ग बताया, कर्ममार्ग बताया तो अर्जुन के मन में विचार आया कि जब ज्ञानमार्ग इतना श्रेष्ठ है तो श्रीभगवान् मुझे कर्मयोग करने को क्यों प्रवृत्त कर रहे हैं? क्यों युद्ध जैसा घोर कर्म करने को कह रहे हैं? मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह अपने प्रश्न का उत्तर भी अपने अनुकूल चाहता है।

चतुर्थ अध्याय के अन्त में श्रीभगवान् ने अर्जुन को बताया-

योगसन्न्यस्तकर्माणं(ञ्), ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं(न्) न कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय॥4.41॥

योग के द्वारा कर्म का संन्यास और ज्ञान के द्वारा सारे संशयों को तोड़ देना। जिसका सम्पूर्ण कर्मों से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है और विवेक व ज्ञान के द्वारा जिसके सम्पूर्ण संशयों का नाश हो गया है, ऐसे स्वरूप-परायण मनुष्य को कर्म नहीं बाँधते।

तस्मादज्ञानसम्भूतं(म्), हृत्स्थं(ञ्) ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं(म्) संशयं(य्ँ) योगम्, आतिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥4.42॥

इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! हृदय में स्थित ज्ञान रूपी तलवार से, अज्ञान से उत्पन्न अपने संशय का छेदन करके कर्मयोग व

समता में स्थित हो जाओ और युद्ध के लिये खड़े हो जाओ।

अब अर्जुन श्रीभगवान् से आगे क्या पूछते हैं?

5.1

अर्जुन उवाच सन्न्यासं(ङ्) कर्मणां(ङ्) कृष्ण, पुनर्योगं(ञ्) च शंससि। यच्छ्रेय एतयोरेकं(न्), तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥5.1॥

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! (आप) कर्मों का स्वरूप से त्याग करने की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। (अतः) इन दोनों साधनों में जो एक निश्चित रूप से कल्याण कारक हो ,उसको मेरे लिये कहिये।

विवेचन- अर्जुन पूछते हैं कि हे भगवन्! आप योग की भी प्रशंसा करते हो, कर्मयोग की भी प्रशंसा करते हो, कर्मसंन्यास की भी प्रशंसा करते हो। कर्मसंन्यासयोग और कर्मयोग दोनों में ही दुविधा होती है।

संन्यास यानि सम्यक न्यास, अच्छे से किया गया कर्मों का त्याग।

अर्जुन पूछते हैं कि हे श्रीभगवान्! हमें हमारा कल्याण किसमें है यह समझ में नहीं आता, तो कृपया आप ही बताएँ कि दोनों में से कौन सा मेरे लिए हितकारी है? यच्छ्रेय, किस मार्ग पर चलने से मेरा कल्याण हो जाएगा? यह निश्चिय पूर्वक बताइए। हमने देखा है कि हमे कर्म, अकर्म, विकर्म क्या है? इन बातों में असामञ्जस्य रहता है। क्या ज्ञानियों में भी रहता है? तो अर्जुन हम सभी की ओर से पूछते हैं कि कृपया श्रेष्ठ मार्ग बताएँ।

5.2

श्रीभगवानुवाच सन्न्यासः(ख्) कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते॥5.2॥

श्रीभगवान् बोले - संन्यास (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। परन्तु उन दोनों में (भी) कर्मसंन्यास-(सांख्ययोग) से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

विवेचन- संन्यास यानि काम्य कर्मो का त्याग, ऐसे कर्म जिनसे सब कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी। ऐसे कर्मो का त्याग संन्यासी को करना पड़ता है। स्वयं के लिए भोजन पकाना भी वर्जित है। संन्यासी के लिए अग्नि त्याग बताया गया है। संन्यास आसान नहीं है।

सच्चिदानन्द की प्राप्ति हो जाएगी, परन्तु दोनों मार्गो में कर्मयोग विशेष है क्योंकि कर्मयोग का आचरण सुगम, सरल, सुरक्षित है। नदी तैर कर पार कर सकते है पर यदि पत्नी, बच्चे साथ हों तो नौका में बैठ कर भी नदी के उस पार सुगमता से पहुँचा जा सकता है। कर्म संन्यास से कर्मयोग विशेष है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि वे संन्यासी कौन हैं यह पहले जान लो।

5.3

ज्ञेयः(स्) स नित्यसन्न्यासी, यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं(म्) बन्धात्प्रमुच्यते॥5.3॥

हे महाबाहो ! जो मनुष्य न (किसी से) द्वेष करता है (और) न (किसी की) आकांक्षा करता है; वह (कर्मयोगी) सदा संन्यासी

समझने योग्य है; क्योंकि द्वन्द्वों से रहित (मनुष्य) सुखपूर्वक संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं कि जो किसी से भी द्वेष नहीं करता, न व्यक्ति से, न ही कर्म से और जो स्वयं के लिए किसी भी सुख की अपेक्षा नहीं करता, ऐसी अवस्था को प्राप्त व्यक्ति नित्य संन्यासी है।
सुख-दुःख, अनुकूल-प्रतिकूल ये द्वन्द्व मन में चलते रहते हैं, जो इन द्वन्द्वों से मुक्त हो गया उसे कहते हैं कि वह निर्द्वन्द्व हो गया है। संन्यासी की एक सरल व्याख्या यहाँ श्रीभगवान् ने की है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते है,

मी आणि माझी ऐसी आठवण, विसरले ज्याचे अन्तःकरण, पार्था तू संन्यासी जाणं निरन्तर.

जिसका मैं, मेरा ये भाव समाप्त हो गए हैं। **हे विश्वची माझे घर-** सारा संसार मेरा घर है। सभी मेरे हैं, किसी के प्रति द्वेष नहीं है।

अभ्युदय यानि भौतिक सुखों की प्राप्ति, भौतिक उन्नति। निःश्रेयस यानि आत्मज्ञान के पथ पर होने वाली प्राप्ति। श्रीभगवान् कहते हैं कि संन्यास और कर्मयोग दोनों में ही निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। दोनों से ही ध्येय की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी।

श्रीभगवान् कहते हैं कि संन्यासी कौन है, यह तुम जान लो।

5.4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः(फ्), प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः(स्) सम्यग्, उभयोर्विन्दते फलम्॥5.4॥

नासमझ लोग सांख्ययोग और कर्मयोग को अलग-अलग (फल वाले) कहते हैं, न कि पण्डितजन; (क्योंकि) (इन दोनों में से) एक साधन में भी अच्छी तरह से (स्थित) मनुष्य दोनों के फलरूप (परमात्मा को) प्राप्त कर लेता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि साङ्ख्ययोग और कर्मयोग अलग-अलग हैं, यह केवल बालक बुद्धि लोग ही कहते हैं, परन्तु जो विद्वान् हैं, पण्डित हैं, वे साङ्ख्य और कर्म मार्ग दोनों एक ही गन्तव्य तक ले जाने वाले हैं, ऐसा यथार्थ रुप से जानते, समझते हैं।

हे अर्जुन! इतना जान लो कि यदि व्यक्ति इन दोनों में से किसी एक मार्ग को भी निश्चित रूप से अपना लेता है तो उसे साङ्ख्ययोग और कर्मयोग दोनों के ही फलों की प्राप्ति हो जाती है।

5.5

यत्साङ्ख्यैः(फ्) प्राप्यते स्थानं(न्), तद्योगैरपि गम्यते।
एकं(म्) साङ्ख्यं(ञ्) च योगं(ञ्) च, यः(फ्) पश्यति स पश्यति॥5.5॥

सांख्ययोगियों के द्वारा जो तत्त्व प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों के द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। (अतः) जो मनुष्य सांख्ययोग और कर्मयोग को (फलरूप में) एक देखता है, वही (ठीक) देखता है।

विवेचन- श्रीभगवान् आगे कहते हैं, जो योगी व्यक्ति साङ्ख्यमार्ग से या ज्ञानमार्ग से जहाँ पहुँचते हैं, एक संन्यासी भी वहीं पहुँचता है। दोनों का गन्तव्य एक ही है। जो स्थान एक संन्यासी प्राप्त करता है, एक योगी भी उसी स्थान को प्राप्त करता है। साङ्ख्यमार्ग और कर्ममार्ग दोनों एक ही गन्तव्य तक ले जाने वाले हैं, ऐसा जो योगी जानते व समझते हैं, वे इस बात को यथार्थ रूप से जानते हैं।

5.6

सन्न्यासस्तु महाबाहो, दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म, नचिरेणाधिगच्छति॥5.6॥

परन्तु हे महाबाहो ! कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, हे महाबाहो अर्जुन! परन्तु यह जान लो कि कर्मयोग का ज्ञान लिए बिना लिया गया संन्यास केवल दुःख को न्योता देता है। ऐसे संन्यासी दुःख को प्राप्त करते हैं। बिना कर्मयोग किए संन्यास लेना दु:खमय जीवन है। कर्मयोग से युक्त जीवन जीने वाला, उस पर मनन करने वाला, कि मैं ये कर्म किस के लिए और क्यों कर रहा हूँ? को जानने वाला योगी जल्दी ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। जो योगयुक्त होता है वह जल्दी ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

संन्यास लेने से कर्म नहीं छूटते। संन्यासी को स्वयं के लिए नहीं अपितु जनता, जनार्दन के लिए कर्म करने पड़ते हैं। जो श्रेष्ठ संन्यासी हैं, उन्हें हम सदैव कर्म करते हुए देखते हैं, जैसे कि हमारे गुरुदेव जो सदा जन कल्याण के कार्यों में लगे रहते हैं।

5.7

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥5.7॥

जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसका अन्तःकरण निर्मल है, जिसका शरीर अपने वश में है (और) सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा ही जिसकी आत्मा है, (ऐसा) कर्मयोगी (कर्म) करते हुए भी लिप्त नहीं होता।

विवेचन: श्रीभगवान् स्पष्ट बात कहते हैं कि जो व्यक्ति योग से परिपूर्ण जीवन जी रहा है, ऐसा योगयुक्त व्यक्ति जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, जिसके मन में स्वार्थ प्रेरित कोई इच्छा नहीं है, जिसके मन में किसी के भी प्रति राग-द्वेष नहीं है, स्वयं के लिए कोई अपेक्षा नहीं है, सबका कल्याण हो यही भावना मन में रखता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, जिसने अन्तःकरण के सभी घटकों (मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार) सबको स्वयं के बस में किया है, ऐसा विशुद्धात्मा - जिसने अपने शरीर, इन्द्रियों और मन सभी पर विजय प्राप्त की है, ऐसा विजितात्मा। वह जितेन्द्रिय है, वह जैसे इन्द्रियाँ कहेंगी वैसा आचरण नहीं करता, इन्द्रियाँ उसके बस में हैं। उसके मन में अपने पराए का भेद नहीं है, सर्व भूत प्राणियों में उसे बस एक ही आत्मतत्त्व दिखाई देता है। जो आत्मतत्त्व मुझमें है वही सभी में है, यह बात वह जानता है। उसकी एक्सरे दृष्टि केवल सर्व भूत मात्र के शरीर के भीतर बसे शुद्ध आत्मतत्त्व को देखती है, **सर्वभूतात्मभूतात्मा**।

उपरोक्त गुणों वाला व्यक्ति, अपने जीवन के सर्व कर्म करते हुए भी कर्मों से चिपकता नहीं है।

ऐसा व्यक्ति क्या चिन्तन करता है?

5.8, 5.9

नैव किञ्चित्करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्, नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥5.8॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्, नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥5.9॥

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी (मैं स्वयं) कुछ भी नहीं करता हूँ' - ऐसा माने (अतः) देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ,

सूँघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ,
बोलता हुआ, (मल-मूत्र का) त्याग करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखें खोलता हुआ (और) मूँदता हुआ भी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों में बरत रही हैं' - ऐसा समझे।

विवेचन- ऐसे व्यक्ति की धारणा क्या है? उसकी सोच क्या है? उसके विचार क्या होते हैं? वह सारे अच्छे-अच्छे कार्य करता है, परन्तु मैं बिल्कुल नहीं कर रहा हूँ, इस भाव से वह कार्य करता है। कार्य मैं कर रहा हूँ यह भाव ही उसके मन में नहीं रहता है। यह कार्य तो ईश्वर करवा रहे हैं, यह भाव सदा उसके मन में रहता है।

कौन - कौन से कार्य करते समय उसके मन में यह भाव रहता है कि मैं नहीं करता, ईश्वर करवा रहे हैं:

देखते समय, सुनते समय, स्पर्श करते समय, सूँघते समय, खाते समय, जाते समय, सोते समय, श्वास - प्रश्वास करते समय भी, बात करते समय, मल-मूत्र त्याग करते समय, आँखो की पलकें लपक - झपक करते समय भी उसके मन में यही भाव रहते हैं कि इनका कर्त्ता मैं नहीं हूँ।

कुछ बातें हमें भी लगती हैं, जैसे श्वास प्रश्वास करते समय हमें यह नहीं लगता कि मैं कर रहा हूँ, यह तो स्वयं हो रहा है परन्तु कुछ अच्छा काम करने पर हम सोचते हैं, यह मैंने किया है।

ऐसा व्यक्ति जो अपने सर्व कार्य ईश्वर ने किए हैं ऐसा मानता है, इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ वर्तन चल रहा है, वह ऐसा सोचता है। आँखो का विषय दृश्य, कान का विषय शब्द, वे एक दूसरे से संयोजन (interaction) स्थापित कर रहे हैं।

मैं इन्द्रिय हूँ क्या? मैं आँखें हूँ क्या? मैं कौन हूँ? क्या मैं कान हूँ? क्या मैं शरीर हूँ? जो यह जानता है, वह यह जानता है कि ये सब मेरी उपस्थिति में अपने-अपने कार्य कर रही हैं।

परन्तु जिस भाव से यह कहा या सोचा जाता है, वह अति महत्त्वपूर्ण होता है। अगर कोई जेबकतरा कहे कि गीता जी में पढ़ा है कि यह कार्य मैं नहीं ईश्वर कर रहे हैं। यह जेब काटने का कार्य मैं नहीं कर रहा हूँ, यह तो मेरे शरीर द्वारा हो रहा है। तो गीता जी को जानने वाला इन्स्पेक्टर यह कह सकता है कि हाँ! मैं जानता हूँ कि तुम यह शरीर नहीं हो, तो मैं तुम्हें नहीं तुम्हारे शरीर को मार रहा हूँ, जो तुम नहीं हो।

मैं यह शरीर नहीं हूँ यह भाव सदा मन में लाना इतना आसान है क्या? मैं आत्मतत्त्व हूँ- यह जानना। तत्त्ववित्- तत्त्ववेत्ता यानि तत् अर्थात् वो परमात्मा, उसका त्व यानि उसका भाव। वह योगी पुरुष जो उस परमात्मा को उसके भाव सहित जानता है, वह है तत्त्ववेत्ता। परमात्मा के साथ एकरूप होकर जीने वाला ऐसा ज्ञानी इस बात को जानता है कि मैं कुछ नहीं कर रहा, सब परमेश्वर कर रहे हैं।

करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है...
मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ ऐसा कहना और मन में वैसा भाव हो जाना दोनों में बहुत अन्तर है। मुँह से कहना कि श्रीभगवान् ने किया पर मन में भाव रखना कि सब मैंने किया है। यहाँ पर भाव सहित मन में यह बात रखना महत्त्वपूर्ण है।

नैव किञ्चित्करोमीति
मैं कुछ नहीं कर रहा, ऐसा भाव सहित सोचना।

पर इस महत्त्वपूर्ण भाव तक पहुँचने के लिए मनुष्य को क्या करना पड़ेगा?

5.10

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, सङ्गं(न्) त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा॥5.10॥

जो (भक्तियोगी) सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके (और) आसक्ति का त्याग करके (कर्म) करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

विवेचन- श्रीभगवान् बताते हैं कि जो व्यक्ति कोई भी कार्य मैंने किया, यह भाव त्यागकर करता है और उस काम को ब्रह्म परमेश्वर को हे भगवन्! मैं आपको अर्पण कर रहा हूँ, इस भाव से करता है, किसी भी अभिलाषा, उस काम के प्रति आसक्ति का त्याग कर के, जो अर्पण करता है।

तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे मेरा...
इसका पालन करता है। यह मैनें किया है तो मुझे कुछ मिलना चाहिए, प्रशंसा होनी चाहिए, नाम छप कर आना चाहिए, मेरा नाम होना चाहिए आदि भाव का सम्पूर्णतः त्याग करते हुए ऐसा सोचे कि यह श्रीभगवान् का सौंपा हुआ कार्य था मैनें, कर दिया और परब्रह्म परमात्मा को अर्पण कर दिया। इस भाव के साथ उस कर्म से पूर्णतः मुक्त (detached) हो जाना। श्रीभगवान् कहते हैं कि यदि वह कार्य करते समय ऐसे व्यक्ति से कोई गलती भी हो जाती है तो भी उसका पाप उसे नहीं लगता। वे कर्म उससे नहीं चिपकते, ठीक वैसे ही जैसे कमल के पत्तों पर पानी में रह कर भी पानी नहीं ठहरता, **पद्मपत्रमिवाम्भसा।**

ऐसा व्यक्ति संसार में रह कर भी संसार से लिप्त नहीं होता। कर्म करते हुए भी कर्म से लिप्त नहीं होता, कर्म के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है।

इसके विपरीत हम लोग संसार में स्पञ्ज की तरह सब कुछ अपने अन्दर शोषित कर लेते हैं। मैनें किया यह भाव अन्दर घुस जाता है।

फिर ऐसा योगी संसार में कर्म करता है कि नहीं?

5.11

कायेन मनसा बुद्ध्या, केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः(ख्) कर्म कुर्वन्ति, सङ्गं(न्) त्यक्त्वात्मशुद्धये॥5.11॥

कर्मयोगी आसक्ति का त्याग करके केवल (ममतारहित) इन्द्रियाँ-शरीर-मन-बुद्धि के द्वारा केवल अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही कर्म करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा योगी व्यक्ति शरीर के द्वारा पूरा मन लगा कर कर्म करता है। शरीर के द्वारा कर्म करता है और मन के द्वारा कर्म करता है, वह बुद्धि के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा आसक्ति रहित कर्म करता है। नौकरी भी परिवार के लिए श्रीभगवान् के द्वारा सौंपा गया कार्य है- यह जान कर करता है। यह कार्य वह स्वयं के मन की शुद्धि के लिए करता है।

अन्तरङ्ग की शुद्धि क्या आवश्यक है?

जब अन्तरङ्ग शुद्ध हो जाता है तब हमें अपना आत्मरूप, हमारा स्वरूप दिखाई देता है इसलिए चित्त की शुद्धि के लिए कर्म करते रहना चाहिए। मुझे सौंपा हुआ कार्य है ऐसा समझ कर कार्य कर के ईश्वर को समर्पित कर देने चाहिए। जब चित्त निर्मल जल की तरह शान्त हो जाता है तभी उसमें हमें आत्मरूप का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

परिपूर्ण रूप से कर्म फल का त्याग करना चाहिए। मैंने कर्म ईश्वर को अर्पण किए यह भाव भी मन से निकाल देना चाहिए। ऐसी आसक्ति छोड़ कर कर्म करने चाहिए।

आत्मशुद्धि के लिए इस प्रकार से कर्मयोग का आचरण करना आवश्यक है और जो ऐसा आचरण करता है वह इस कर्मयोग से परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। जब ऐसा कर्म आचरण मनुष्य करने लगता है तो वह नित्य संन्यासी बन जाता है।

गीता पढ़ें, पढ़ाएँ, जीवन में लाएँ, ऐसा जो स्वामीजी कहते हैं- वह जीवन में लाना इतना आसान है क्या? पर इसके लिए हमें शुरुआत तो करनी चाहिए। दिनभर में कम से कम एक कार्य ऐसा करें जिससे मुझे कोई लाभ नहीं मिलने वाला हो। श्रीभगवान् का सौंपा हुआ कार्य समझ कर, ईश्वर को अर्पण करते हुए कर्म करने चााहिये और ऐसे कार्य से जो आनन्द की अनुभूति होती है उसे पकड़कर रखना। यह आनन्द ही तो परमात्मा हैं। ऐसे ही छोटे - छोटे आनन्द मिल कर एक दिन हमें उस सच्चिदानन्द के आनन्द की अनुभूति करा देंगे। इसी से मनुष्य को शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

5.12

युक्तः(ख्) कर्मफलं(न्) त्यक्त्वा, शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। अयुक्तः(ख्) कामकारेण, फले सक्तो निबध्यते॥5.12॥

कर्मयोगी कर्म फल का त्याग करके नैष्ठिकी शान्ति को प्राप्त होता है। (परन्तु) सकाम मनुष्य कामना के कारण फल में आसक्त होकर बँध जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि इस प्रकार कर्मयोग से लिप्त योगी का आचरण कर के उसे क्या मिलनेवाला है? श्रीभगवान् को कर्म अर्पण कर के योगी उस कर्म से मुक्त हो जाता है और अर्पण कर के भूल भी गया, तब उसे शान्ति प्राप्त होती है। **नैष्ठिकीम् शान्तिं**, अपना परम् ध्येय प्राप्त करने का जो आनन्द है, उस सच्चिदानन्द की प्राप्ति का आनन्द उसे मिल जाता है, परन्तु मनुष्य इस तरह का आचरण जीवन में नहीं करता है और केवल अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कार्य करता है और जीवन जीता है। वह कर्मो से चिपक जाता है। बन्धन में पड़ जाता है।

इसलिए दिन में कम से कम एकबार ऐसा अनासक्त कर्म आचरण करना ही चाहिए।

5.13

सर्वकर्माणि मनसा, सन्न्यस्यास्ते सुखं(म्) वशी।
नवद्वारे पुरे देही, नैव कुर्वन्न कारयन्॥5.13॥

जिसकी इन्द्रियाँ और मन वश में हैं, (ऐसा) देहधारी पुरुष नौ द्वारों वाले (शरीर रूपी) पुर में सम्पूर्ण कर्मों का (विवेक पूर्वक) मन से त्याग करके निःसन्देह न करता हुआ (और) न करवाता हुआ सुख पूर्वक (अपने स्वरूप में) स्थित रहता है।

विवेचन- श्रीभगवान् आगे कह रहे हैं कि एक योगी जब कार्य करता है तो ऐसा कार्य करता है **कि मन ही मन में कार्य करते समय यह विचार लाता है कि यह श्रीभगवान् द्वारा मुझे सौंपा हुआ कार्य है और वह कार्य कर के मन ही मन में उस ईश्वर को अर्पण कर देता है, जिससे वह योगी सुख का अनुभव करता है।**

ऐसा कौन कर सकता है?
वह योगी जिसने अपने शरीर पर, इन्द्रियों पर, अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली हो। इस कार्य से मुझे कुछ नहीं चाहिए परन्तु यह कार्य करने से लोगो को, जन समुदाय को लाभ मिलेगा इसलिए यह कार्य मुझे करना है, वह इस भावना के साथ कार्य करता है। सभी लोगों में परमात्मा हैं और यह कार्य में परमात्मा के लिए कर रहा हूँ, इस भाव से कर्म करता है।

हमारा शरीर एक पुर यानि नगर है जिसमें नवद्वार हैं। हमारे शरीर में इन द्वारों से आना जाना होता है। आँखो से दृश्य अन्दर आता है, कानों से शब्द, जिह्वा से शब्द बाहर आता है, जिह्वा से रस अन्दर जाता है। मुख, गुदा भी अपने-अपने कार्य करते हैं। ऐसे नवद्वार वाले नगर में हम रहते हैं। यह नगर यानि मैं, यह मैं नहीं हूँ। मैं तो बस नगर में केवल रहता हूँ। सारे कार्य ये

कर्मेन्द्रियाँ और इन्द्रियाँ कर रही हैं। वह अनासक्त भाव से इस शरीर द्वारा अच्छे कार्य करता है और ईश्वर को अर्पण करता है।

जैसे कि परम श्रद्धेय स्वामीजी कहते है **गीता पढ़ें, पढ़ाएँ और आचरण में लाएँ।** इस त्रिसूक्ति को हम सभी समझें और पालन करें। गीताजी को आचरण में कैसे लााएँ? यह बात इस श्लोक में श्रीभगवान् ने बताई है। इसलिए दिन में कम से कम एकबार ऐसा अनासक्त कर्म आचरण करना, सबके हित का कार्य करना, इस कार्य से मुझे कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा और ऐसा कर्म कर के ईश्वर को अर्पण कर देना चाहिए और इस तरह गीताजी को नित्य आचरण में लाएँ। इस त्रिसूक्ति को यदि हम आचरण में लाएँगे तो हम सच्चिदानन्द को प्राप्त हो जाएँगें।

यह बात श्रीमद्भगवद्गीता भी कहती है। परम पूज्य स्वामी जी भी कहते हैं और इसी दृढ़ विश्वास के साथ कि यह भाव हमारे जीवन के लिए परम उपकारी है आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- उमा दत्त शर्मा भैया
प्रश्न- चौथे और पाँचवें श्लोक में साङ्ख्य शब्द का क्या अर्थ है?
उत्तर- हमारे साहित्य में षड्दर्शन कहे गए हैं अर्थात् तत्त्व दर्शन जैसे
न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। जहाँ तत् का अर्थ परमात्मा और त्व का अर्थ भाव है तो तत्त्व का अर्थ हुआ परमात्मा का भाव। परमात्मा का भाव, तत्त्व क्या है उसको जानने का ज्ञान साङ्ख्य ज्ञान है जो कपिल महामुनि ने अपनी माता को सिखाया था और उनके द्वारा सिखाया गया ज्ञान ही साङ्ख्य दर्शन है। योग भी एक तरह का दर्शन है जो साङ्ख्य योग की तरह का ही है।

श्रीभगवान् कहते हैं-
एकं(म्) साङ्ख्यं(ञ्) च योगं(ञ्) च, यः(फ्) पश्यति स पश्यति॥
अतः जो मनुष्य साङ्ख्ययोग और कर्मयोग को (फलरूप में) एक देखता है, वही (ठीक) देखता है।
प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ को जानना ही साङ्ख्य दर्शन है।

प्रश्नकर्ता- मोनिका दीदी
प्रश्न- आपने कर्मयोग की बात की तो हम लोग भी सुबह से शाम तक कर्म करते ही हैं। क्या फिर श्रीभगवान् की पूजा अर्चना की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि दिन भर घर के कार्य तो कर ही रहे हैं?
उत्तर- दिन भर के कार्य अगर बोझ समझकर करें तो यह बन्धन है लेकिन अगर उन्हीं कार्यों को श्रीभगवान् का कार्य मानकर और श्रीभगवान् को अर्पण करने के लिए करें तो यह किसी तरह का बन्धन नहीं रहता, इसलिए उस परमपिता से अपना नाता बनाए रखने के लिए श्रीभगवान् की पूजा की विधा है जिसे करने से उनसे हमारा नाता अनवरत रूप से बना रहता है।

इस सम्बन्ध में एक बहुत सुन्दर प्रसङ्ग स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन का है। वे एक बार अलवर घूमने गए और अलवर नरेश ने उनसे कहा कि मैं मूर्ति पूजा को नहीं मानता। एक पत्थर की मूर्ति में किस तरह से श्रीभगवान् हो सकते हैं? मेरे लिए तो लोगों की सेवा ही श्रीभगवान् की सेवा है। स्वामी विवेकानन्द जी ने नरेश के दीवान से पूछा कि यह दीवार पर चित्र किसका है? उन्होंने कहा कि यह हमारे नरेश के पिताजी का चित्र है तो स्वामी जी ने दीवान से कहा कि इस चित्र पर थूँक दो। उनके ऐसा कहने पर दीवान बड़ी असमञ्जस की स्थिति में आ गया और उसने ऐसा करने में अपनी असमर्थता दिखाई। तब स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा कि ये नरेश के पिताजी नहीं हैं, यह तो मात्र कागज है तो तुम्हें किस बात का असमञ्जस? इस तरह से स्वामी विवेकानन्द जी ने नरेश को श्रीभगवान् की मूर्ति पूजा की महिमा समझाई। मन्दिर में जाकर श्रीभगवान् के विग्रह के दर्शन कर उन्हें अपने हृदय में समा लेना और फिर संसार भर में इस रूप के दर्शन करना ही मूर्ति पूजा का वास्तविक अर्थ है।

प्रश्नकर्ता- मंगला दीदी
प्रश्न- क्या सूतक में भी गीता जी का पारायण कर सकते हैं?
उत्तर- गीता जी हमारी माँ हैं और इनका पठन-पाठन हम कभी भी कर सकते हैं लेकिन हमें अपनी बुद्धि अनुसार पवित्र होकर

ही गीता जी का पठन करना चाहिए। अगर हम प्रवास में हैं और यात्रा कर रहे हैं तो गीता जी का पठन करने के लिए किसी प्रकार के विशेष नियमों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम अपनी माँ का अवलम्बन किसी भी स्थिति में ले सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- कमलेश कुमार भैया
प्रश्न- कर्त्तृत्व की भावना का त्याग और कर्मफल त्याग की भावना- ये कुछ कठिन लग रहे हैं? कृपया इसके बारे में बताएँ?
उत्तर- इसे पूरी तरह से करने की आवश्यकता ही नहीं है लेकिन दिन भर में कोई एक कार्य ऐसा करना कि उससे किसी तरह की कोई अपेक्षा नहीं करना, जैसे रास्ते में पड़े कूड़े को देखकर उठाकर कूड़ेदान में डाल देना और भाव यह रखना कि इसे मैंने नहीं किया। '**मैंने किया**' का भाव जब धीरे-धीरे से समाप्त होने लगता है तो आनन्द की अनुभूति बढ़ने लगती है और इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए हमारे यत्न भी बढ़ने लगते हैं और हमारे यही प्रयास हमें अन्ततोगत्वा अपने अन्तिम लक्ष्य सच्चिदानन्द की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- डॉक्टर वीना दीदी
प्रश्न- जब संसार के समस्त कार्य श्रीभगवान् की शक्ति से ही हो रहे हैं तो फिर अपराध क्यों हो रहे हैं?
उत्तर- कर्म करते समय इच्छा जीव की परन्तु शक्ति परमात्मा की होती है। अब उसे शक्ति का उपयोग, विनियोग किस तरह से करना है, यह जीव पर निर्भर करता है। जिस तरह से विद्युत रेफ्रिजरेटर में ठण्डक और हीटर में गर्मी उत्पन्न होती है, अर्थात् उपकरण बदलने से विद्युत का प्रभाव भी बदल जाता है। इसी तरह से शरीर का स्वभाव प्रकृति का स्वभाव है जिसमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों का प्रभाव होता है। जिस व्यक्ति में तमोगुण अधिक होंगे वह अपराध की ओर बढ़ेगा और दूसरी ओर सत्त्वगुण वाला व्यक्ति हमेशा कल्याण के कार्य करने का प्रयास करेगा तो प्रकृति अर्थात् शरीर जैसा है वैसा ही कार्य होता है लेकिन शक्ति निःसन्देह परमपिता परमात्मा की ही होती है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं

पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||